
इकाई 3 नक्षत्र साधन

इकाई की संरचना

- 3.0 उद्देश्य
- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 नक्षत्र परिचय
 - 3.2.1 नक्षत्र गणना का ऐतिहासिक स्वरूप
 - 3.2.2 नक्षत्रों की तारा संख्या, स्वरूप एवं स्वामी
 - 3.2.3 नक्षत्रों की ध्रुवादि संज्ञाएं
 - 3.2.4 नक्षत्रों की उर्ध्वादि मुख तथा अन्धादि संज्ञाएं
- 3.3 नक्षत्रों का चरण एवं अक्षर निर्धारण तथा इसके आधार पर नामकरण
- 3.4 नक्षत्र साधन
- 3.5 क्षय-वृद्धि विचार
- 3.6 सारांश
- 3.7 पारिभाषिक शब्दावली
- 3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 3.9 सहायक पाठ्यसामग्री
- 3.10 बोध प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भली भाँति जान सकेंगे कि—

- नक्षत्र किसे कहते हैं तथा इनकी संख्या कितनी है।
- नक्षत्र ज्ञान का ऐतिहासिक स्वरूप क्या है।
- नक्षत्र चक्र का आरम्भ कहां से होता है।
- नक्षत्रों की ताराएं संख्या कितनी हैं।
- नक्षत्रों की विभिन्न संज्ञाएं क्या है।
- नक्षत्र का मान कितना होता है।
- नक्षत्रों की क्षय-वृद्धि कैसे होती है।
- नक्षत्रों का स्वरूप क्या है।
- नक्षत्र के गणितीय अवयव क्या है।
- नक्षत्र का साधन कैसे किया जाता है।

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातकोत्तर ज्योतिष कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रचलित पंचाङ्ग एवं मुहूर्त नामक तृतीय पाठ्यक्रम के खण्ड-2 (पंचाङ्ग साधन एवं प्रकार) की तृतीय इकाई है

जिसका शीर्षक नक्षत्र साधन है। इससे पूर्व पंचाङ्ग परिचय नामक प्रथम खण्ड की इकाईयों में आपने पंचाङ्ग के स्वरूप, निर्माण परम्परा, सैध्दान्तिक स्वरूप सहित भेद एवं उपयोगिता के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत पंचाङ्ग के एक और अंग नक्षत्र के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं। जिसका ज्योतिष शास्त्र की गणना, मुहूर्त्त एवं फलादेश परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तन की सिद्धि में सहायक ग्रहस्पष्टीकरण के अन्तर्गत ग्रहों का स्पष्ट मान नक्षत्र एवं राश्यादि में ही प्राप्त होता है जिसके द्वारा फलादेश की प्रक्रिया अग्रसरित होती है। ग्रहों के राश्यादि मान में प्राप्त स्पष्ट मान का सूक्ष्म विभाजन नक्षत्रों के द्वारा ही सम्भव हो पाता है जिससे फलादेश में सूक्ष्मता आती है। वर्तमान में सामान्यतया ग्रहों की राशियों एवं भावों में स्थिति देखकर स्थानानुसार तथा ग्रह-राशि-भावों से निर्मित योगानुसार फलादेश का प्रचलन है परन्तु इनमें यदि नक्षत्रों का भी शास्त्रोक्त विधि से प्रयोग किया जाय तो फलादेश की प्रक्रिया और भी पुष्ट एवं लाभकारी होगी। मुहूर्त्त क्रम में तो नक्षत्रों के बिना मुहूर्त्तों का निर्धारण ही सम्भव नहीं होता, संहिता ज्योतिष के अन्तर्गत ग्रहों के विभिन्न नक्षत्रों में भ्रमण से शुभाशुभ फल भी निर्धारित होते हैं तथा वास्तु के अन्तर्गत पिण्डानयन की प्रक्रिया नक्षत्रों के बिना पूर्ण नहीं हो सकती अतः ज्योतिष शास्त्र के मूल भूत ज्ञान हेतु नक्षत्रों का ज्ञान आवश्यक है जिसे हम इस इकाई के अन्तर्गत समझेंगे।

3.2 नक्षत्र परिचय

भारतीय ज्योतिष की परिभाषा के अनुसार सौर मण्डल में विद्यमान पिण्डों में जिन पिण्डों का स्वतः स्थान परिवर्तन नहीं होता वे नक्षत्र संज्ञक होते हैं। वैसे तो इन नक्षत्रों का भी स्थान परिवर्तन होता है परन्तु इसके अत्यल्प होने के कारण स्थिर की तरह ही माना जाता है। वस्तुतः तारों के समूह को नक्षत्र के नाम से परिभाषित किया गया है। जिनमें एक मुख्य तारा होती है। ग्रह और तारों के साथ-साथ नक्षत्रों पर भी भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीनकाल से ही अध्ययन के साथ शोध का प्रचलन रहा है। वैसे तो सूर्यास्त के बाद आकाश में टिमटिमाते हुए दिखाई देने वाले प्रकाश पिण्डों को लोक में तारा एवं नक्षत्र के नाम से जाना जाता है परन्तु इसमें से सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र एवं शनि, राहु एवं केतु जो कि गतिशील हैं वे केवल ग्रह हैं तथा इसके अलावा सभी नक्षत्र या तारे हैं। किन्तु उनमें भी नक्षत्र मण्डल का 27 भाग विशेष रूप से अश्विनी आदि 27 नामों से कहे गये हैं अर्थात् क्रान्तिवृत्त में आने वाले मुख्य 27 तारा समूहों को ही नक्षत्र के रूप में परिगणित करते हुए भारतीय ज्योतिष की चिन्तन परम्परा अपने वर्तमान स्वरूप में प्रतिष्ठित है। यद्यपि इन 27 नक्षत्रों के अतिरिक्त भी कुछ नक्षत्रों का वर्णन ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में यथा अवसर प्राप्त होता है परन्तु मुख्य परम्परा में इन ग्रह पथ में आने वाले नक्षत्रों का ही उपयोग होता है। भारतीय ऋषियों ने ज्ञानेन्द्रिय एवं बाह्येन्द्रिय जन्य वेध के द्वारा इन नक्षत्रों के नाम, संख्या एवं स्वरूप आदि का निर्धारण किया है। उपर्युक्त के अन्तर्गत समागत पिण्डों का एक नियत स्थान निर्धारित है जिसमें सर्वदा इन नक्षत्र पिण्डों की स्थिति बनी रहती है जिसे हम सब नक्षत्र चक्र, नक्षत्र मण्डल, राशि मण्डल, राशिचक्र, क्रान्तिवृत्त तथा भवृत्त आदि के नाम से जानते हैं। भारतीय भूकेन्द्रिक ग्रह कक्षा क्रम में भूमि के ऊपर क्रम से चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, मंगल, गुरु तथा शनि एवं अन्त में नक्षत्र कक्षा विद्यमान है जिसमें सभी नक्षत्रों की स्थिति बताई गयी है। स्वरूप संख्या एवं स्थिति के अनुसार इन नक्षत्र चक्र में 27 नक्षत्रों की संख्या ऋषियों द्वारा पुरा काल से ही निर्धारित है। उपर्युक्त नक्षत्र चक्र का समान 27 विभाग करने से एक नक्षत्र का मान सिद्ध होता है जिसके अन्तर्गत अनेक तारों का समूह स्थित होता है एवं जिनमें एक मुख्य तारा होती है जिसे योग तारा के नाम से जाना जाता है। योग तारा के द्वारा ही

नक्षत्र पुंज की पहचान होती है। इन नक्षत्र समूहों को अश्विनी आदि निम्नलिखित नामों से जाना जाता है। 1. अश्विनी, 2. भरणी, 3. कृत्तिका, 4. रोहिणी, 5. मृगशिरा, 6. आर्द्रा, 7. पुनर्वसु, 8. पुष्य, 9. आश्लेषा, 10. मघा, 11. पूर्वाफाल्गुनी, 12. उत्तराफाल्गुनी, 13. हस्त, 14. चित्रा, 15. स्वाती, 16. विशाखा, 17. अनुराधा, 18. ज्येष्ठा, 19. मूल, 20. पूर्वाषाढा, 21. उत्तराषाढा, 22. श्रवण, 23. धनिष्ठा, 24. शतभिषा, 25. पूर्वाभाद्रपद, 26. उत्तराभाद्रपद, 27. रेवती इन 27 नक्षत्रों के अतिरिक्त भी अगस्त्य, व्याध, अग्नि, ब्रह्मा, प्रजापति, आपवत्स, आप, लुब्धक आदि कुछ नक्षत्रों का वर्णन सिध्दान्त ग्रन्थों में प्रसंगानुसार प्राप्त होता है। वर्णन ही नहीं अपितु इन अगस्त्य आदि नक्षत्रों का भोग, ध्रुवक एवं शर आदि का मान भी वर्णित है जिससे उन नक्षत्रों को वेध द्वारा प्रत्यक्षतया देखा जा सके। फलित परम्परा में इन 27 नक्षत्रों के अतिरिक्त एक 28 वें नक्षत्र का वर्णन भी प्राप्त होता है जिसे अभिजित नक्षत्र के नाम से जाना जाता है। यह सैध्दान्तिक रूप से कोई स्वतन्त्र नक्षत्र नहीं होता अपितु 27 नक्षत्रों के अन्तर्गत ही उत्तराषाढा और श्रवण नक्षत्र के मध्य इन्हीं दोनों नक्षत्रों के मान से बनता है इसके मान की विस्तृत चर्चा नक्षत्र साधन के क्रम में करेंगे। नक्षत्रों का नक्षत्रचक्र राशि वृत्त में नियत रहते हुए भी प्रायोगिक रूप में हम नक्षत्रों की गणना ग्रहों के सापेक्ष करते हैं जिनका फलितादि एवं मुहूर्त्तादि व्यवहार किया जाता है। अर्थात् कोई भी ग्रह नक्षत्रचक्र के जिस नक्षत्र के समक्ष रहता है वही उस ग्रह का नक्षत्र होता है। सभी ग्रह अपनी-अपनी ग्रहकक्षा के अनुसार निर्धारित गतियों द्वारा भिन्न-भिन्न काल में नक्षत्रों का भोग करते हैं अर्थात् नक्षत्र के क्षेत्र से गुजरते हैं। इस क्रम में चन्द्रमा प्रतिदिन एक नक्षत्र का भोग करता है तथा दैनिक व्यवहार में हम सब चान्द्र नक्षत्र का ही व्यवहार करते हैं तथा नक्षत्र शब्द से सामान्यतया चान्द्र नक्षत्रों का ही बोध होता है। सम्प्रति व्यवहार एवं गणना में नक्षत्र चक्र का आरम्भ अश्विनी से होता है परन्तु वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणग्रन्थों में कृत्तिकादि गणना का भी वर्णन प्राप्त है। जिसका कारण अयन-चलन जान पड़ता है।

3.2.1 नक्षत्रगणना का ऐतिहासिक स्वरूप

वैदिक संहिताओं एवं तदङ्गीभूत ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदादि की प्राचीनता को प्रत्यक्ष या परोक्ष में स्वीकार करते हुए भी कुछ भारतीय एवं वैदेशिक इतिहासकारों द्वारा इसमें वर्णित विषयों की भारतीय मूलकता को नकारते हुए अन्य देशों को श्रेय देने की परम्परा बहुत पुरानी है जबकि तटस्थ भाव से विषयों की समीक्षा से सरलतया उन विषयों का ऐतिहासिक स्वरूप दृष्टिगत हो जाता है। ऋग्वेदसंहिता एवं अथर्ववेद संहिता में अनेक स्थलों पर नक्षत्र शब्द का स्पष्ट प्रयोग है वहां मघा के लिए अघा एवं फाल्गुनी के लिए अर्जुनी शब्द का प्रयोग भी मिलता है। जिसकी पुष्टि शतपथ ब्राह्मण से भी हो जाती है। तैत्तिरिय संहिता में सभी नक्षत्रों के नाम एवं उनके देवता स्पष्टतया दिखते हैं तैत्तिरिय ब्राह्मण में "प्रबाहुर्वा अग्रे क्षताव्यातेयुः। तेषामिन्द्रः क्षत्राण्यादत्त। न वा इमानि क्षत्राण्यभूवन्निति। तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम्॥" इस प्रकार नक्षत्र शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए नक्षत्रों का शुभाशुभत्व भी निरूपित है। इन उपर्युक्त प्रमाणों के साथ-साथ ऋग्वेद संहिता में वर्णित पुनर्वसु, चित्रा, मघा एवं रेवती आदि नक्षत्र सूचक शब्दों की उपस्थिति देखते हुए भी भारतीय ज्योतिष के सुप्रसिद्ध इतिहासकार शंकरबालकृष्ण दीक्षित लिखते हैं कि उपर्युक्त पुनर्वसु आदि शब्द भाषा में पहले से ही प्रचलित थे परन्तु कालान्तर से उन-उन नक्षत्रों के दर्शनीयत्व, धनदातृत्व इत्यादि प्रत्यक्ष कल्पित या अनुभूत गुणों के आधार पर उनका प्रयोग नक्षत्र अर्थ में किया जाने लगा। कुछ अन्य नक्षत्रों के विषय में भी ऐसी ही दृष्टि दीक्षित जी की है। वैदिक एवं वेदाङ्ग कालीन सभी साक्ष्यों के बाद भी कुछ यूरोपियन इतिहासकार कहते हैं कि वेदों में प्रतिपादित नक्षत्र पद्धति का मूल भारतीयों का नहीं है परन्तु डा० थीबो ने यह भी सिध्द किया है कि तथ्यों की समीक्षा करते पर बिलकुल ही अवसर नहीं रह जाता कि

भारतीयों ने क्रान्तिवृत्त का नक्षत्र विभाग बेबिलोन से लिया होगा। परन्तु बेबर लिखता है कि नक्षत्र पद्धति भारतीय नहीं है। इसी समीक्षा में बेबर ने वेदों के सम्बन्ध में भी अनेक अतार्किक बातें लिखी हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि चीन से भारतीय नक्षत्र पद्धति का ज्ञान प्राप्त हुआ है परन्तु यह उपयुक्त नहीं प्रतीत होता क्योंकि शंकरबालकृष्ण दीक्षित ने वर्जस के मत को उपस्थापित करते हुए लिखा है कि क्रान्तिवृत्त के 27 या 28 विभाग थोड़े से भेद से हिन्दू, अरब और चीनियों से मिलते हैं तथा क्रान्तिवृत्त के 12 विभाग भी कुछ समानार्थी हैं तथापि क्रान्तिवृत्त के 27 विभाग विस्तृत रूप से हिन्दू सभ्यता में अतिप्राचीन काल से आ रहे हैं परन्तु दूसरे राष्ट्रों में इसका प्रमाण नहीं के बराबर या अत्यल्प है अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि यह नक्षत्र ज्ञान पद्धति शुद्ध रूप से भारतीय है। जिन यूरोपियन लोगों का कथन है कि हिन्दुओं ने नक्षत्र पद्धति चीन, बेबिलोन या अन्य किसी अज्ञान राष्ट्र से लिए हैं उनमें कुछ के मत में इसका समय ई.स.पू. 1100 से प्राचीन नहीं है। बेबर ने स्पष्ट तो नहीं बताया परन्तु उनके मत में इनका समय ई.स.पू. 2780 से प्राचीन कदापि नहीं होगा। परन्तु वैदिक संहिताओं के तथ्यों से यह सिद्ध हो चुका है कि ई० के 3000 हजार वर्ष पूर्व भारतीयों को नक्षत्र ज्ञान हो चुका था और वास्तविक में जिन ऋग्वेदादि संहिताओं में नक्षत्रों के ज्ञान उद्धृत हो चुके हैं वे तो इससे भी प्राचीन हैं अतः यह कदापि नहीं कहा जा सकता है कि भारतीयों ने नक्षत्र ज्ञान दूसरे देशों से प्राप्त किया है। तटस्थ बुद्धि से ऐतिहासिक चिन्तन करने वाले को यह तो अवश्य ही सोचना चाहिए कि यदि चीनी लोगों ने नक्षत्र पद्धति स्वयं विकसित की थी तो भारतीय भी ऐसा कर सकते हैं।

3.2.2 नक्षत्रों की तारा संख्या, स्वरूप एवं स्वामी

जैसा कि आपने उपर पढ़ा है कि अनेक तारों के समूह से नक्षत्र पुञ्ज का निर्माण होता है तथा उसमें एक मुख्य तारा होती है जिससे उस नक्षत्र को पहचाना जाता है तथा वह योग तारा उस नक्षत्र पुञ्ज की सभी ताराओं में अधिक चमकदार होती है। अश्विन्यादि नक्षत्रों में ताराओं की संख्या प्राचीन आचार्यों के मत में क्रमशः निम्नलिखित है। यथा— अश्विनी की 3, भरणी की 3, कृत्तिका की 6, रोहिणी की 3, मृगशिरा की 3, आर्द्रा की 1, पुनर्वसु की 4, पुष्य की 3, आश्लेषा की 5, मघा की 5, पूर्वाफाल्गुनी की 2, उत्तराफाल्गुनी की 2, हस्त की 5, चित्रा की 1, स्वाती की 1, विशाखा की 4, अनुराधा की 4, ज्येष्ठा की 3, मूल की 11, पूर्वाषाढा की 2, उत्तराषाढा की 2, अभिजित की 3, श्रवण की 3, धनिष्ठा की 4, शतभिषा की 100, पूर्वाभाद्रपद की 2, उत्तराभाद्रपद की 2 और रेवती की 32 ताराएं होती हैं। इन मुख्य ताराओं के साथ कुछ अन्य लघु प्रकाशक ताराओं के संयोग से अश्विन्यादि नक्षत्रों के निम्नलिखित स्वरूप बनते हैं जिनके आधार पर प्राचीन काल में नक्षत्रों की पहचान हो सकी है। इनमें अश्विनी की आकृति घोड़े के मुख जैसी, भरणी की भगाकार, कृत्तिका की छूरे के आकार, रोहिणी की शकट (गाड़ी), जैसी, मृगशीर्ष की हिरण के मुख जैसी, आर्द्रा की मणि जैसी, पुनर्वसु की गृह जैसी, पुष्य की बाण (तीर) सदृश, आश्लेषा की चक्र, मघा की भवन सदृश, पूर्वाफाल्गुनी की मंचाकृति, उत्तराफाल्गुनी की शैय्या सदृश, हस्त की हाथ सदृश, चित्रा की मोती सदृश, स्वाती की मूंगा सदृश, विशाखा की तोरणाकार, अनुराधा ओदन पुंज सदृश, ज्येष्ठा की कुण्डलाकृति, मूल की सिंह के पुच्छ इव, पूर्वाषाढा की हांथी के दंत सदृश, उत्तराषाढा की मंच सदृश, धनिष्ठा की मृदंग यन्त्र सदृश, शतभिषा की वृत्ताकार, पूर्वाभाद्रपदा की मंच सदृश, उत्तराभाद्रपदा की यमलपुरुष सदृश और रेवती की मृदंग यन्त्र सदृश स्वरूप होता है। इन आकृतियों के द्वारा आज भी आकाश के नक्षत्र मण्डल में अश्विन्यादि नक्षत्रों को पहचाना जा सकता है। फलित व्यवहार में इन सभी नक्षत्रों के स्वामी भी बताए गए हैं जो निम्न लिखित हैं। अश्विनी के स्वामी अश्विनी कुमार (दोनों अश्विनी कुमार), भरणी के यमराज, कृत्तिका के अग्नि, रोहिणी के ब्रह्मा, मृगशिरा के चन्द्रमा, आर्द्रा के शिव, पुनर्वसु के अदिति, पुष्य के बृहस्पति,

आश्लेषा के सर्प, मघा के पितर, पूर्वाफाल्गुनी के भग नामक सर्प, उत्तराफाल्गुनी के अर्यमा नामक सूर्य, हस्त के सूर्य, चित्रा के विश्वकर्मा, स्वाती के वायु, विशाखा के इन्द्र और अग्नि, अनुराधा के मित्र, ज्येष्ठा के इन्द्र, मूल के राक्षस, पूर्वाषाढ़ा के जल, उत्तराषाढ़ा के विश्वदेव, अभिजित के विधाता, श्रवण के विष्णु, धनिष्ठा के वसु, शतभिषा के वरुण, पूर्वाभाद्रपद के अजपात नामक सूर्य, उत्तराभाद्रपद के अहिर्बुध्न्य नामक सूर्य, रेवती के स्वामी पूषा इस प्रकार ये 28 नक्षत्रों के स्वामी हुए।

नक्षत्र तथा उनके स्वामी का ज्ञान इस सारिणी द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

नक्षत्र	स्वामी
अश्विनी	अश्विनी कुमार
भरणी	यमराज
कृत्तिका	अग्नि
रोहिणी	ब्रह्मा
मृगशीर्ष	चन्द्रमा
आर्द्रा	शिव
पुनर्वसु	अदिति
पुष्य	बृहस्पति
आश्लेषा	सर्प
मघा	पितर
पूर्वाफाल्गुनी	भग नामक सूर्य
उत्तराफाल्गुनी	अर्यमा
हस्त	सूर्य
चित्रा	त्वष्टा
स्वाती	वायु
विशाखा	इन्द्र और अग्नि
अनुराधा	मित्र
ज्येष्ठा	इन्द्र
मूल	राक्षस
पूर्वाषाढ़ा	जल
उत्तराषाढ़ा	विश्वदेव
अभिजित	विधाता
श्रवण	विष्णु
धनिष्ठा	वसु
शतभिषा	वरुण
पूर्वाभाद्रपदा	अजपात
उत्तराभाद्रपदा	अहिर्बुध्न्य
रेवती	पूषा

3.2.3 नक्षत्रों की ध्रुव आदि संज्ञाएं

जैसा कि आप जानते हैं कि ज्योतिषशास्त्र का मुख्य प्रयोजन है ग्रह-नक्षत्र-राशियों के परस्पर सम्बन्ध द्वारा लोक में शुभाशुभ फलकथन एवं पंचाङ्गों का मुख्य प्रयोजन है तिथि-वार-नक्षत्र-योग-करणों के परस्पर सम्बन्ध द्वारा कार्य विशेष हेतु काल विशेष (मुहूर्त) का निर्धारण अतः फलित के क्रम में अश्विनी आदि नक्षत्रों की कार्य के अनुरूप गुण धर्म के अनुरूप ध्रुव, स्थिर आदि संज्ञाएं आचार्यों ने निर्धारित की हैं जिससे मुहूर्त आदि के कथन में लाघव होता है तथा संज्ञाओं के अनुरूप कार्यों के सम्पादन में सहायता मिलती है। वो ध्रुवादि संज्ञाएं निम्नलिखित हैं—

ध्रुव एवं स्थिर संज्ञक नक्षत्र — उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद व रोहिणी नक्षत्र तथा रविवार दिन ध्रुव एवं स्थिर संज्ञक होते हैं इनमें सामान्यतया स्थिरकर्म जैसे बीजवपन, गृहारम्भ, बागीचा, उपवन आदि लगाना तथा आगे मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में कथित स्थिर कर्म शुभ होते हैं।

चर एवं चल संज्ञक नक्षत्र — स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा तथा शतभिषा नक्षत्र और सोमवार दिन चर एवं चल संज्ञक होते हैं इनमें चल कर्म अर्थात् गजारोहण, अश्वारोहण, गमनागमन, यान चालन आदि तथा लघु संज्ञक नक्षत्रों में भी कथित कर्म सामान्यतया शुभ होते हैं।

उग्र एवं क्रूर संज्ञक नक्षत्र — पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, मघा व भरणी नक्षत्र एवं मंगलवार दिन उग्र एवं क्रूर संज्ञक होते हैं इनमें सामान्यतया घातकर्म(मारण), अग्निदान, खलकर्म, विषप्रयोग, शस्त्र प्रयोग आदि तथा दारुण संज्ञक नक्षत्रों में कथित कर्म शुभ होते हैं।

मिश्र एवं साधारण संज्ञक नक्षत्र — विशाखा और कृत्तिका नक्षत्र तथा बुधवार दिन मिश्र एवं साधारण संज्ञक होते हैं इनमें सामान्यतया अग्निहोत्र सम्बन्धीकर्म, काम्य वृषोत्सर्ग तथा उग्र संज्ञक नक्षत्रों में कथित कर्म शुभ होते हैं।

क्षिप्र एवं लघु संज्ञक नक्षत्र — हस्त, अश्विनी, पुष्य और अभिजित् नक्षत्र तथा गुरुवार दिन क्षिप्र एवं लघु संज्ञक होते हैं इन नक्षत्रों में सामान्यतया रतिकर्म, वस्तु क्रय-विक्रय, शास्त्रादि का ज्ञान, आभूषण सम्बन्धी कृत्य, शिल्पविद्याभ्यास, 60 कलाओं के अन्तर्गत प्रतिपादित कलाओं का अभ्यास तथा चर संज्ञक नक्षत्रों में कथित कार्य सिद्ध होते हैं।

मृदु एवं मैत्र संज्ञक नक्षत्र — मृगशीर्ष, रेवती, चित्रा और अनुराधा नक्षत्र तथा शुक्रवार दिन मृदु एवं मैत्र संज्ञक होते हैं इनमें सामान्यतया संगीत, वस्त्र परिधान, स्त्री प्रसङ्ग, मैत्री कार्य और अलंकार धारण आदि शुभ होते हैं।

तीक्ष्ण एवं दारुण संज्ञक नक्षत्र — मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा और आश्लेषा नक्षत्र तथा शनिवार दिन तीक्ष्ण एवं दारुण संज्ञक होते हैं सामान्यतया इनमें उग्रकर्म, भयंकरकर्म, मारणादि पापकर्म, मित्रों में भेद उत्पन्न करना, हांथी, घोड़े, बैल को प्रशिक्षित करना, बन्धनकर्म, अग्निकर्म, चौरकर्म आदि शुभ होते हैं।

सारिणी द्वारा स्पष्ट ज्ञान करें—

संज्ञा	नक्षत्रों के नाम	वार
ध्रुव एवं स्थिर	उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद व रोहिणी	रविवार
चर एवं चल	स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा तथा शतभिषा	सोमवार

उग्र एवं क्रूर	पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, मघा व भरणी	मंगलवार
मिश्र एवं साधारण	विशाखा और कृत्तिका	बुधवार
क्षिप्र एवं लघु	हस्त, अश्विनी, पुष्य और अभिजित्	बृहस्पतिवार
मृदु एवं मैत्र	मृगशीर्ष, रेवती, चित्रा और अनुराधा	शुक्रवार
तीक्ष्ण एवं दारुण	मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा और आश्लेषा	शनिवार

3.2.4 अधोमुख ऊर्ध्वमुख एवं तिर्यकमुख नक्षत्र

चर-स्थिर की तरह नक्षत्रों की अधोमुख आदि संज्ञाएं भी होती हैं जिसके अन्तर्गत मूल, आश्लेषा, मिश्र संज्ञक (विशाखा, कृत्तिका), उग्रसंज्ञक (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, मघा) **अधोमुख संज्ञक** होते हैं अर्थात् इन नक्षत्रों का मुख नीचे की ओर होता है। इनमें वापी, कूप, तडाग आदि का खनन, देवतागार हेतु खनन, निधिखनन, बोरिंग आदि कराना शुभ होता है। आर्द्रा पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा तथा ध्रुव संज्ञक (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी) नक्षत्र **ऊर्ध्वमुख संज्ञक** होते हैं। इन ऊर्ध्वमुख संज्ञक नक्षत्रों में प्रासाद निर्माण, राज्याभिषेक, पट्टबन्धन एवं उच्छ्रिति सम्बन्धी (उंचाई) कोई भी कार्य करना शुभ होता है। इसी प्रकार मैत्र संज्ञक (मृगशीर्ष, रेवती, चित्रा, अनुराधा), हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, ज्येष्ठा और अश्विनी नक्षत्र **तिर्यङ्मुख संज्ञक** होते हैं इन्हें पार्श्वमुख, सम्मुख एवं समीपमुख नक्षत्र भी कहा जाता है इन नक्षत्रों में सामान्यतया मार्ग निर्माण, यन्त्रादि निर्माण, राज्यविस्तार, यान, वाहन आदि का प्रथम बार प्रचलन एवं बीजवपन आदि कार्य शुभ होते हैं।

अन्ध, मन्द, मध्य एवं सुलोचन संज्ञाएं— अश्विनी आदि नक्षत्रों की प्रसंगानुसार फलित प्रयोग में अनेक प्रकार की संज्ञाएं वर्णित हैं जिनमें से ध्रुवादि एवं ऊर्ध्वमुखादि संज्ञाओं को आपने जाना है अब आप इसी संज्ञा ज्ञान के क्रम में अन्ध आदि संज्ञाओं को जानेंगे इन संज्ञाओं का उपयोग मुख्यतया नष्ट वस्तुओं की प्राप्ति ज्ञानार्थ किया जाता है। इसके अन्तर्गत नक्षत्रों की निम्नसंज्ञाएं निर्धारित हैं—

अन्धसंज्ञक— धनिष्ठा, पुष्य, रोहिणी, पूर्वाषाढा, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी और रेवती नक्षत्र की अन्ध संज्ञा होती है।

मन्दसंज्ञक— हस्त, उत्तराषाढा, अनुराधा, शतभिषा, आश्लेषा, अश्विनी, और मृगशिरा नक्षत्र की मन्द संज्ञा होती है।

मध्यसंज्ञक— आर्द्रा, मघा, पूर्वाभाद्रपदा, चित्रा, ज्येष्ठा, अभिजित और भरणी नक्षत्रों की मध्य संज्ञा होती है।

सुलोचनसंज्ञक — स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, कृत्तिका, उत्तराभाद्रपदा, मूल और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रों की सुलोचन संज्ञा होती है।

फल— जैसा कि ऊपर लिखा है इनका प्रयोग नष्ट वस्तुओं के विचार किया जाता है आचार्य रामदैवज्ञ ने मुहूर्तचिन्तामणि में लिखा है कि—

विनिष्टार्थस्य लाभान्धे मन्दे शीघ्रं प्रयत्नतः।

स्यादूरे श्रवणं मध्ये श्रुत्याप्ती न सुलोचने॥

अर्थात् यदि अन्धसंज्ञक नक्षत्रों में कोई वस्तु नष्ट हुई हो या उस वस्तु की चोरी हुई हो तो शीघ्र ही उस वस्तु का लाभ हो जाता है। मन्दसंज्ञक नक्षत्रों में चोरी आदि हुई वस्तु का प्रयत्न करने से लाभ होता है, परन्तु मध्यसंज्ञक नक्षत्रों में यदि कोई वस्तु

चोरी हो जाय या नष्ट हो तो बहुत देरी से उसका कुछ पता चलता है तथा यदि सुलोचनसंज्ञक नक्षत्र हो तो इसमें नष्टादि वस्तु का न तो पता चलता है और न ही वह वस्तु प्राप्त होती है।

निम्नलिखित सारिणी द्वारा सरलतया जाना जा सकता है

संज्ञा	नक्षत्र	फल
अन्ध	धनिष्ठा, पुष्य, रोहिणी, पूर्वाषाढ़ा, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, रेवती	लाभ
मन्द	हस्त, उत्तराषाढ़ा, अनुराधा, शतभिषा, आश्लेषा, अश्विनी, मृगशिरा	यत्नलाभ
मध्य	आर्द्रा, मघा, पूर्वभाद्रपदा, चित्रा, ज्येष्ठा, अभिजित, भरणी	दूरश्रवण
सुलोचन	स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, कृत्तिका, उत्तराभाद्रपदा, मूल, पूर्वाफाल्गुनी	कुछ भी ज्ञात नहीं

3.3 नक्षत्रों का चरण एवं अक्षर निर्धारण तथा इसके आधार पर नामकरण

सामान्यतः जन्म नाम के आदि अक्षर के ज्ञान के लिए हमें नक्षत्रों के बारे में जानना होगा। ज्योतिष शास्त्र में 27 नक्षत्रों की गणना की गयी है। इन सत्ताइसों नक्षत्रों के चार-चार भाग होते हैं जिन्हें हम चरण के नाम से जानते हैं। इन सत्ताइसों नक्षत्रों के 108 चरणों को 12 राशियों में समान रूप से विभाजित करने से एक राशि में 9 चरण होते हैं अर्थात् 2सम्पूर्ण नक्षत्र (दो नक्षत्रों के चार-चार मिलकर कुल 8 चरण) तथा तीसरे नक्षत्र का एक चरण मिलकर 9 चरण की एक राशि होती है।

नक्षत्रों के नाम	चरण	चरणाक्षर	राशि
अश्विनी	4	चू चे चो ला	मेष
भरणी	4	ली लू ले लो	
कृत्तिका	1	अ	
कृत्तिका	3	इ उ ए	वृष
रोहिणी	4	ओ वा वी वू	
मृगशीर्ष	2	वे वो	
मृगशीर्ष	2	का की	मिथुन
आर्द्रा	4	कु घ ङ. छ	
पुनर्वसु	3	के का हा	
पुनर्वसु	1	ही	कर्क
पुष्य	4	हु हे हो डा	
अश्लेषा	4	डी डू डे डो	

मघा पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी	4 4 1	मा मी मू मे मो टा टी टू टे	सिंह
उत्तराफाल्गुनी हस्त चित्रा	3 4 2	टो पा पी पू ष ण ठ पे पो	कन्या
चित्रा स्वाती विशाखा	2 4 3	रा री रू रे रो ता ती तू ते	तुला
विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा	1 4 4	तो ना नी नू ने नो या यी यू	वृश्चिक
मूल पूर्वाषाढा उत्तराषाढा	4 4 1	ये यो भा भी भू ध फा ढा भे	धनु
उत्तराषाढा श्रवण धनिष्ठा	3 4 2	भो जा जी खी खू खे खो गा गी	मकर
धनिष्ठा शतभिषा पूर्वाभाद्रपद	2 4 3	गू गे गो सा सी सू से सो दा	कुम्भ
पूर्वाभाद्रपद उत्तराभाद्रपद रेवती	1 4 4	दी दू थ झ ज दे दो चा ची	मीन

चरण ज्ञान करने का नियम

भभोग को चार से भाग दें, जो भागफल प्राप्त हो वह अगर भयात से अधिक हो या भयात के समान हो तो जातक का जन्म नक्षत्र के प्रथम चरण में हुआ जानें। परन्तु यदि भागफल से भयात अधिक हो तो भागफल को दो से गुणा करें। दो गुणा करने पर प्राप्त फल से यदि भयात कम हो तो जन्म द्वितीय चरण में समझें। फिर भी यदि भयात अधिक हो तो तीन से गुणा करें। तीन गुणा करने पर प्राप्त फल से यदि भयात कम हो तो जन्म तृतीय चरण में समझें इससे भी अधिक हो तो चार से गुणा करें। चार से गुणा करने पर फल चार से कम ही होगा क्यों कि भभोग में चार से ही भाग दिया गया है। तब जन्म चतुर्थ चरण में समझना चाहिए।

3.4 नक्षत्र साधन

वैसे तो नक्षत्र साधन किसी भी ग्रह के द्वारा किया जा सकता है क्यों कि सभी ग्रह किसी न किसी नक्षत्र पर स्थित होते हैं परन्तु पञ्चाङ्ग में चन्द्रमा से सम्बद्ध नक्षत्र का उपयोग होता है इसलिए यहाँ चन्द्रमा के द्वारा ही नक्षत्र साधन वर्णित किया जा रहा है। नक्षत्र परिचय क्रम में आप सब ने पढ़ा है कि चन्द्रमा के मान के द्वारा ही

नक्षत्र की उत्पत्ति होती है अतः नक्षत्र साधन हेतु स्पष्ट चन्द्रमा एवं चन्द्रमा के गति का ज्ञान होना अति आवश्यक है क्योंकि इनके बिना नक्षत्रों का साधन सम्भव ही नहीं हो सकता। अतः स्पष्ट चन्द्रमा एवं चन्द्रमा के गति का ज्ञानकर सिद्धान्त एवं करण ग्रन्थों में वर्णित नक्षत्र साधन के विधियों द्वारा आप सभी सरलता पूर्वक नक्षत्र साधन कर सकते हैं। जैसा कि आचार्य ने कहा है कि—

भभोगोऽष्टशतीलिप्ताः खाशिवशैलास्तथा तिथेः।

ग्रहलिप्ताभभोगाप्ता भानि भुक्त्या दिनादिकम्।।

अर्थात् स्पष्ट चन्द्रमा का कलादि बनाकर कलादि फल में 800 से भाग देंगे, इस प्रकार प्राप्त भागफल गत नक्षत्र की संख्या होगी तथा उसमें 1 जोड़ने से वर्तमान नक्षत्र की संख्या होगी एवं शेष बचा हुआ कलादि वर्तमान नक्षत्र का कलादि भुक्त मान होगा, इस वर्तमान नक्षत्र के भुक्तकला को 800 कला में से घटाने पर वर्तमान नक्षत्र का कलादि भोग्यकला होगा। अब इस वर्तमान नक्षत्र के भुक्त एवं भोग्य कलादि मान के द्वारा वर्तमान नक्षत्र के भुक्त एवं भोग्य घट्यादि मान प्राप्त करने के लिए भुक्त मान में 60 से गुणाकर स्पष्ट चन्द्रमा के गति से भाग देने पर वर्तमान नक्षत्र का भुक्त घट्यादि मान होता है एवं भोग्यकला में 60 से गुणाकर चन्द्रमा के गति से भाग देने पर वर्तमान नक्षत्र का भोग्य घट्यादि मान प्राप्त हो जाएगा। नक्षत्र साधन का सूत्रात्मक स्वरूप अधोलिखित है—

सूत्र— कलादि स्पष्ट चन्द्रमा $\div$ 800 = गतनक्षत्र

गतनक्षत्र संख्या + 1 = वर्तमान नक्षत्र

शेष कलादि = वर्तमान नक्षत्र का कलादि भुक्तमान

800 - भुक्तकला = वर्तमान नक्षत्र का कलादि भोग्यमान

60 $\div$ चन्द्रमा की स्पष्टगति = वर्तमान नक्षत्र का भुक्तघटी

60 $\div$ चन्द्रमा की स्पष्टगति = वर्तमान नक्षत्र का भोग्यघटी

भोग्यघटी + भुक्तघटी = नक्षत्र की सर्व भोगघटी

उदाहरण— अब हम नक्षत्र साधन को उदाहरण के द्वारा समझेंगे—

विक्रम संवत् 2078, चौत्र शुक्ल प्रतिपदा, दिनाङ्क 13.04.2021 के दिन नक्षत्र साधन का उदाहरण प्रस्तुत है—

स्पष्ट चन्द्रमा की राश्यादि 00.11.37.57, चन्द्रगति = 727.29

स्पष्ट चन्द्रमा को कलादि बनाने के लिए

11 अंश ग 60 = 660कला + 37कला = 697 कला

कलादि चन्द्रमा 697.57 $\div$ 800 = 00 लब्धि

शेष — 697.57

अतः रेवती नक्षत्र गत हुआ और वर्तमान नक्षत्र अश्विनी नक्षत्र हुआ। वर्तमान नक्षत्र अश्विनी का कलादि भुक्त 697.57 प्राप्त हुआ अतः भोग्य के लिए भुक्त मान को 800 से घटाने पर

800.00 - 697.57 = 102.03 अश्विनी का कलादि भोग्यमान

भुक्त घटी प्राप्ति के लिए भुक्तकलादि को विकलात्मक बनाएंगे तथा चन्द्रगति को भी विकला बना लेंगे।

भुक्तकला 697.57 $\times$ 60 + 57 = 41877 $\times$ 60 = 2512620 (भुक्तमान प्रतिविकला में)

चन्द्रगति $727.29 \times 60 + 29 = 43649$ (विकलात्मक चन्द्रगति)

अब भुक्तघटी प्रतिविकला में विकलात्मक चन्द्रगति से भाग दें। यथा—

$$\begin{array}{r} 43649)2512620(57 \\ \underline{218245} \\ 330160 \\ \underline{305543} \\ 24617 \times 60 = \end{array}$$

$$\begin{array}{r} 43649)1477020(33 \\ \underline{130947} \\ 167550 \\ \underline{130947} \\ 36603 \end{array}$$

अश्विनी का भुक्तघटी आदि मान 57.33 स्वल्पान्तर से हुआ पुनः भोग्यघटी प्राप्ति के लिए भोग्यकला के द्वारा यही प्रक्रिया करेंगे।

भोग्यकला $102.03 \times 60 + 03 = 6123 \times 60 = 367380$

चन्द्रगति $727.29 \times 60 + 29 = 43649$ (विकलात्मक चन्द्रगति)

$$\begin{array}{r} 43649)367380(8 \\ \underline{349192} \\ 18188 \times 60 = \\ 43649)1091280(25 \\ \underline{87298} \\ 218300 \\ \underline{218245} \\ 000055 \end{array}$$

अतः अश्विनी का घटी आदि भोग्य 08.25 प्राप्त हुआ

इष्ट नक्षत्र अश्विनी का सर्वमान $= 57.33 + 08.25 = 65.58$ हुआ।

3.5 तिथि वृद्धि एवं क्षय

भारतीय ज्योतिष के संहिता एवं होरा स्कन्ध के अन्तर्गत समष्टि एवं व्यक्तिगत फल निर्धारण के क्रम में नक्षत्रों के वृद्धि एवं क्षय का स्वरूप फल सहित दिखाई देता है। परन्तु सैध्दान्तिक एवं गणितीय दृष्टि से किसी भी नक्षत्र की 03।20 ह्रास वृद्धि नहीं होती अपितु अश्विन्यादि सभी नक्षत्र चन्द्रमा के अन्तर से क्रमशः नियमित रूप में उपस्थित होते हैं। तथापि पंचांगों सहित प्रायोगिक जीवन में उपर्युक्त विषय की उपलब्धता वास्तविक स्थिति के ज्ञान हेतु हमें प्रेरित करती रहती है। अतः आइए हम सब नक्षत्रों के वृद्धि एवं क्षय के स्वरूप का अध्ययन करते हैं।

जैसा कि ऊपर आपने पढ़ा है कि सैध्दान्तिक दृष्टि से किसी भी नक्षत्र का क्षय या वृद्धि नहीं होता अपितु भारतीय काल गणना परम्परा में अनेक कालमानों के समवेत व्यवहार के कारण अधिमास, क्षयमास तथा तिथि, नक्षत्र आदि के ह्रास-वृद्धि की आभासिक स्थिति उत्पन्न होती है। प्रस्तुत प्रसङ्ग में यह भी स्मरणीय है कि दिनों का प्रयोग हम सावन मान में करते हैं जो कि एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय के मध्यवर्ती तथा 60 घटी से कुछ अधिक (गति कलोत्पन्नासु तुल्य अधिक) होता है, नक्षत्र चन्द्रमा के भोगकाल से उत्पन्न होते हैं जिनका मध्यम मान 60 घटी के आसन्न होता है। अतः घट्यादि मान में अल्प, नक्षत्रों का यदि मान में अधिक सावन दिन के अन्तर्गत समावेश

हो जाता है तथा उसका किसी भी सूर्योदय के साथ सम्पर्क नहीं होता है तो उसकी वृद्धि संज्ञा हो जाती है क्यों कि इस गणना परम्परा में सूर्योदय से सम्बन्धित नक्षत्रों का ही क्रम गणना में समावेश किया जाता है इसीलिए सूर्योदय की असम्बद्धता से नक्षत्र का क्षय तथा द्विसम्बद्धता से नक्षत्र वृद्धि की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। नक्षत्र क्षय की स्थिति उत्पन्न होने पर एक सावन दिन में तीन नक्षत्रों की सन्धियां पड़ती हैं जिसमें प्रथम नक्षत्र सूर्योदय के कुछ बाद तक रहता है जिससे सूर्योदय के बाद द्वितीय नक्षत्र का आरम्भ होता है और यह द्वितीय नक्षत्र अग्रिम सूर्योदय के पूर्व ही समाप्त हो जाता है जिससे सूर्योदय के पूर्व ही तृतीय नक्षत्र का आरम्भ हो जाता है अतः द्वितीय नक्षत्र का पूर्व एवं पर किसी भी सूर्योदय से सम्पर्क नहीं होने के कारण क्षय संज्ञा हो जाती है। नक्षत्र क्षय का अधिकतम प्रमाण 8 घटी का होता है अतः क्षय नक्षत्र का मान भी 52 घटी से कम नहीं मिलता परन्तु परिभाषा के अनुसार सूर्योदय से असम्बद्धता इसकी क्षय संज्ञा कर देती है।

नक्षत्र वृद्धि की स्थिति उत्पन्न होने पर एक नक्षत्र का तीन सावन दिवसों से सम्बन्ध बनता है जिसमें सूर्योदय के कुछ समय पूर्व नक्षत्र का आरम्भ होकर द्वितीय दिन पूर्ण 60 घटी का मान बना रहता है तथा तीसरे दिन सूर्योदय के कुछ काल बाद तक उस नक्षत्र की स्थिति बनी रहती है अतः दो सूर्योदयों से सम्पर्क होने से इसकी वृद्धि संज्ञा हो जाती है। सामान्यतया नक्षत्र का मध्यममान सावन दिन से कम होने के कारण एक नक्षत्र में दो सूर्योदय का होना अस्वाभाविक लगता है परन्तु जब चन्द्रमा की अल्पगति के कारण नक्षत्र का मान सावन दिन से अधिक हो जाता है तो यह स्थिति उत्पन्न होती है। नक्षत्र वृद्धि का अधिकतम मान 8 घटी तक होता है जिससे नक्षत्र 68 घटी तक हो सकता है। सामान्य नक्षत्र का केवल एक सूर्योदय से ही सम्पर्क होता है तथा नक्षत्र क्रम में उसकी स्वाभाविक गणना होती है। आप किसी भी पंचांग में उपर्युक्त स्थितियों को स्पष्ट रूप में देख सकते हैं।

3.6 सारांश

भारतीय ज्योतिष शास्त्र की समग्रता में नक्षत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। क्यों कि ज्योतिष शास्त्र के परमप्रयोजन की सिद्धि में सहायक ग्रहों के स्पष्टीकरण की सूक्ष्मता का आंकलन इसके बिना सम्भव नहीं हो सकता। इतना ही नहीं अपितु संहिता के फल प्राप्ति के क्षेत्र, मुहूर्त एवं वास्तु के पिण्डादि निर्धारण में नक्षत्र ही मुख्य घटक होते हैं। नक्षत्रों की संख्या 27 एवं अभिजित को लेकर 28 होती है इनमें अभिजित का मान पृथक् नहीं होता अपितु मध्यम मान से उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के अन्त की 15 घटी एवं श्रवण नक्षत्र के आदि की 4 घटी मिलाकर कुल 19 घटी अभिजित नक्षत्र का मान होता है। सैध्वान्तिक दृष्टि से एक निश्चित परिधि के अन्तर्गत आने वाले तारा समूहों को नक्षत्र कहते हैं तथा इस क्षेत्र को नक्षत्र चक्र, राशिचक्र या क्रान्तिवृत्त के नाम से जाना जाता है तथा इस क्रान्तिवृत्त के समान 27 भाग करने से 27 नक्षत्र सिद्ध होते हैं। तारा पुञ्ज में नक्षत्रों का पहचान कराने वाली एक मुख्य तारा होती है जिन्हें योग तारा के नाम से जाना जाता है। आचार्यों ने अश्विन्यादि नक्षत्रों के तारा पुञ्ज में आने वाली संख्या एवं इन तारा समूहों से बनने वाले स्वरूपों का भी वर्णन किया है। नक्षत्र चक्र में नक्षत्र ग्रहों के स्थान निर्धारक होते हैं तथा नक्षत्रों का उपयोग ग्रहों के सापेक्ष ही किया जाता है जैसे दैनिक जीवन में पञ्चाङ्ग के अन्तर्गत चन्द्र नक्षत्रों का ही ग्रहण होता है अर्थात् चन्द्रमा प्रतिदिन नक्षत्र चक्र में जिस नक्षत्र के विभाग में होता है वही नक्षत्र नित्य व्यवहार में लिया जाता है। इसी लिए नक्षत्रों का साधन ग्रह कलाओं की सहायता से किया जाता है तथा चन्द्र कलाओं से चन्द्र नक्षत्र एवं सूर्य कलाओं से सूर्य नक्षत्र प्राप्त होता है। फलित के क्रम में इन नक्षत्रों की अनेक संज्ञाएँ भी निर्धारित हैं। क्षय-वृद्धि के विचार क्रम में वस्तुतः किसी नक्षत्र की क्षय-वृद्धि नहीं होती परन्तु

सूर्योदय से असम्बद्ध होने से नक्षत्रों की क्षय तथा दो सूर्योदयों से युक्त होने से वृद्धि संज्ञा होती है। नक्षत्रों के उत्पत्ति स्थान एवं प्रचलन के सन्दर्भ में विभिन्न ऐतिहासिक विवेचनाओं से यह निर्विवाद रूप में सिद्ध है कि भारतीय ज्योतिष में नक्षत्रों का प्रयोग पूर्णतया भारतीय ऋषियों की अपनी उपलब्धि है अतः इसका श्रेय अन्य किसी राष्ट्र को नहीं दिया जा सकता।

3.7 पारिभाषिक शब्दावली

राहु,केतु	— सूर्य एवं चन्द्रमा के भ्रमण वृत्तों के सम्पात जिन्हें ग्रह के रूप में पढ़ा गया है।
सम्पात	— दो वृत्तों का स्पर्श स्थान।
अहोरात्र	— दिन,रात्रि का समग्र मान।
होरा	— 1 घण्टा = 2.5 घटी = राश्यर्ध्द।
देशान्तर	— शून्य अक्षांश के याम्योत्तर वृत्त अर्थात् रेखादेश से पूर्व या पश्चिम का अन्तर।
चरान्तर	— विषवत् रेखा से उत्तर या दक्षिण का अन्तर।
स्पष्ट देशान्तर	— देशान्तर मे चरान्तर को नियमानुसार जोड़ने या घटाने से स्पष्ट देशान्तर होता है।
लंकादेश	— जिस स्थान का अक्षांश शून्य हो।
वारप्रवृत्ति	— दिन के आरम्भ होने का काल।
ग्रहकक्षा	— जिस पथ में ग्रहों का भ्रमण होता है उसे ग्रह कक्षा कहते हैं।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. भारतीय ज्योतिष का इतिहास
2. ग्रहलाघवम्
3. तैत्तरीय ब्राह्मण
4. पंचांग साधन
5. ज्योतिष शास्त्र
6. भारतीय ज्योतिष—डॉ० शंकरबालकृष्ण दीक्षित

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. केशवीय जातक पद्धति
2. ज्योतिष सर्वस्व
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान
4. भारतीय ज्योतिष
5. ग्रहलाघवम्
6. सूर्यसिद्धान्त
7. ज्योतिष सिद्धान्त मंजूषा

1. नक्षत्रों का विस्तृत परिचय दीजिये।
2. नक्षत्रों की संज्ञाओं का निरूपण करिए।
3. स्वकल्पित उदाहरण द्वारा नक्षत्रों का साधन कीजिये।
4. नक्षत्रों की ऐतिहासिक परम्परा का निरूपण कीजिये।
5. ज्योतिषशास्त्र में नक्षत्रों के योगदान को स्पष्ट कीजिये।
6. भुक्त भोग्य सहित नक्षत्रों के साधन का सूत्र लिखिये।



ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY